डा. राजीव कुमार,
इतिहास विभाग,
एच. डी. जैन कॉलेज, आरा,

Topic - पश्चिम भारत के प्रारंभिक दलित - आंदोलनों में महिलाओं की भागीदारी। सावित्री बाई फुले के योगदान संदर्भ में।
Examin the participation and leadership of women in the early dalit moments in western India. (Development of dalit women consciousness in the context of the contribution of Savitri bai Phule)

पश्चिम भारत के प्रारंभिक दलित आंदोलनों में महिलाओं की भागीदारी केवल सहायक भूमिका तक सीमित नहीं थी, बल्कि उन्होंने वैचारिक, शैक्षिक और संगठनात्मक स्तर पर नेतृत्वकारी हस्तक्षेप भी किया। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में महाराष्ट्र और बंबई प्रेसीडेंसी के क्षेत्र में उभरे दलित-बहुजन आंदोलनों—विशेषतः सत्यशोधक समाज—ने जाति-विरोधी संघर्ष को स्त्री-मुक्ति के प्रश्न से जोड़ा। इस प्रक्रिया में सावित्रीबाई फुले का योगदान केन्द्रीय और परिवर्तनकारी था।

1. सामाजिक-ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :

19वीं शताब्दी का पश्चिम भारत गहरी जातिगत असमानताओं, बाल-विवाह, विधवा-दमन और स्त्री-शिक्षा के अभाव से ग्रस्त था। दलित एवं शूद्र समुदायों की स्त्रियाँ दोहरे-तिहरे शोषण का सामना कर रही थीं—जाति, वर्ग और लिंग के आधार पर। इस संदर्भ में ज्योतिराव फुले और सावित्रीबाई फुले द्वारा आरंभ किया गया आंदोलन सामाजिक क्रांति की दिशा में निर्णायक कदम था।

2. प्रारंभिक दलित आंदोलनों में महिलाओं की भागीदारी :

(क) शिक्षा के माध्यम से हस्तक्षेप :

1848 में पुणे में कन्या-विद्यालय की स्थापना केवल शैक्षिक पहल नहीं थी, बल्कि ब्राह्मणवादी पितृसत्ता के विरुद्ध वैचारिक विद्रोह था। सावित्रीबाई ने स्वयं अध्यापन कर स्त्रियों—विशेषकर शूद्र-अतिशूद्र बालिकाओं—को शिक्षा से जोड़ा। शिक्षा को उन्होंने आत्मसम्मान और सामाजिक न्याय का साधन बनाया।

(ख) संगठनात्मक भूमिका :

सत्यशोधक समाज में स्त्रियों की सक्रिय भागीदारी थी। सावित्रीबाई ने विधवा-पुनर्विवाह, अंतरजातीय विवाह और प्रसूता-सहायता जैसे कार्यक्रमों का संचालन किया। उन्होंने 'बाल हत्या प्रतिबंधक गृह' की स्थापना कर परित्यक्त शिशुओं और विधवाओं को संरक्षण दिया।

(ग) सार्वजनिक नेतृत्व :

सावित्रीबाई केवल सहयोगी नहीं थीं; वे आंदोलन की सह-नेता थीं। ज्योतिराव की मृत्यु (1890) के बाद उन्होंने सत्यशोधक समाज का नेतृत्व संभाला और आंदोलन की निरंतरता बनाए रखी। यह दलित स्त्री नेतृत्व का ऐतिहासिक उदाहरण है।

3. सावित्रीबाई फुले और दलित स्त्री चेतना :

(क) आत्मसम्मान और अस्मिता :

सावित्रीबाई ने अपनी कविताओं और भाषणों के माध्यम से दलित स्त्रियों को शिक्षा, आत्मनिर्भरता और अन्याय के विरुद्ध संघर्ष का संदेश दिया। उनकी रचनाएँ स्त्री-अस्मिता और आत्मसम्मान की उद्घोषणा थीं।

(ख) ब्राह्मणवादी वर्चस्व की आलोचना :

उन्होंने जाति-आधारित ज्ञान-व्यवस्था को चुनौती दी। दलित स्त्रियों को यह बताया गया कि उनकी हीनता सामाजिक संरचना का परिणाम है, न कि ईश्वरीय नियति। यह विचार दलित स्त्री चेतना के वैचारिक विकास का आधार बना।

(ग) अंतःसंबंधित (Intersectional) दृष्टि :

सावित्रीबाई के कार्यों में जाति और लिंग के अंतःसंबंध को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। उन्होंने समझा कि दलित मुक्ति बिना स्त्री-मुक्ति के अधूरी है। यह दृष्टि आगे चलकर डॉ. भीमराव आंबेडकर के स्त्री-सशक्तिकरण संबंधी विचारों में भी परिलक्षित हुई।

4. अन्य महिलाओं की भूमिका :

पश्चिम भारत के दलित आंदोलनों में ताराबाई शिंदे जैसी लेखिकाओं ने भी पितृसत्ता की तीखी आलोचना की। ताराबाई की कृति स्त्री-पुरुष तुलना स्त्री-अधिकार विमर्श का प्रारंभिक दस्तावेज मानी

जाती है। इससे स्पष्ट होता है कि दलित-बहुजन आंदोलन में स्त्री-चेतना एक संगठित वैचारिक प्रवाह के रूप में उभर रही थी।

5. समग्र मूल्यांकन :

पश्चिम भारत के प्रारंभिक दलित आंदोलनों में महिलाओं की भागीदारी ने आंदोलन को सामाजिक आधार प्रदान किया। सावित्रीबाई फुले ने शिक्षा, संगठन और वैचारिक नेतृत्व के माध्यम से दलित स्त्री चेतना को विकसित किया। उनका योगदान केवल सामाजिक सुधार तक सीमित नहीं था, बल्कि वह एक व्यापक सामाजिक-न्याय आंदोलन का स्त्रीवादी आयाम था।
इस प्रकार, सावित्रीबाई फुले के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि पश्चिम भारत के दलित आंदोलनों में महिलाओं की भूमिका सहायक नहीं, बल्कि परिवर्तनकारी और नेतृत्वकारी थी, जिसने दलित स्त्री चेतना को संगठित, आत्मसम्मानपूर्ण और संघर्षशील स्वरूप प्रदान किया।